R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-19, अङ्क-2 फरवरी 2019 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

तीर्थधाम मङ्गलायतन में सोलहवें वार्षिक महोत्सव पर

गुरुवाणी मंथन शिविर की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-19, अङ्क-2 (वी.नि.सं. 2544) फरवरी 2019

बहिनश्री के वचनामृत का भावानुवाद

केवलज्ञान तलहटी मानो,
धन्य मुनि निर्ग्रन्थ दशा।
अन्तर में चैतन्य गुणों का,
अनन्त परिग्रह धाम बसा॥
बाहर में श्रामण्य हेतु बस,
देहमात्र परिग्रह है।
प्रतिबन्धन से रहित दशा है,
आत्मध्यान वृद्धिंगत है॥71॥

आत्मद्रव्य को ग्रहण करे,
और झूल रहे निज आंगन में।
मुनिपुंगव निज जागृत रहते,
सोते बाहर से मन में॥72॥

द्रव्य निवृत्त सदा से है,
उसका हो यदि दृढ़ अवलम्बन।
मुक्ति हाथ में आ गयी मानो,
मुनियों को हो प्रत्याख्यान॥73॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़
पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती मंगलाबेन
नानालाल पारेख
ए-7, विवेकानन्द पार्क-3, डॉ. अम्बेडकर रोड, नेहरू मेमोरियल हॉल के सामने,
पूना - 411001 (महा.)

क्या - कहाँ

आत्म-साधना की रीति..... 5
हे जीव ! ऐसे चैतन्यस्वभाव का.....12
पाँच रत्नों द्वारा आत्मा के..... 15
मूर्ख सिंह और चालाक बंदर 20
चालाक सिंह और मूर्ख बंदर 21
आचार्यदेव परिचय शृंखला.....22
श्री सिद्धसेन 22
श्री मानतुंगस्वामी 24
उपदेश सिद्धांत रत्नमाला 27
समाचार-दर्शन 31

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

आत्म-साधना की रीति

आत्मराजा की सेवा द्वारा ही आत्मा सधता है;
राग की सेवा द्वारा आत्मराजा प्रसन्न नहीं होता।

[राजकोट में श्री समयसार गाथा 17-18 पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचनों से]

आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, वह 'राजा' है, अर्थात् स्वरूप की श्रेष्ठ लक्ष्मी से वह शोभायमान है; ऐसे चैतन्यराजा को पहिचानकर—उसकी श्रद्धा करके मोक्षार्थी जीव को उसकी सेवा करनी चाहिए।

जो जीव मोक्षार्थी है, उसकी यह बात है। मोक्षार्थी अर्थात् एक आत्मा का ही अर्थी, अन्य किसी का अर्थी नहीं। जो संसार का अर्थी है, वह मोक्ष का अर्थी नहीं है। जो राग का-पुण्य का-वैभव का अर्थी है, वह आत्मा का अर्थी नहीं है; जगत को अच्छा लगाने या जगत से बड़प्पन लेने का जो अर्थी है, वह आत्मा का अर्थी नहीं है। जो आत्मार्थी हुआ है, जिसे एक आत्मार्थ साधने का ही काम है, दूसरी कोई भावना नहीं है—ऐसा जीव अपने चिदानंदस्वरूप आत्मा को जानकर उसी का सेवन करता है। आत्मा का ही अर्थी होकर आत्मा का सेवन करने से अवश्य आत्मा के आनंद की प्राप्ति होती है।

जिन्हें अब संसार का विष उतार देना है और मोक्षसुख के अमृत का स्वाद चखना है, वे जीव स्वानुभूति द्वारा अपने शुद्ध आत्मा का सेवन करते हैं।

देखो, पहले से ही स्व-आत्मा का सेवन करने की बात कही है, पर की सेवा करने की बात नहीं की। पहले देव-गुरु-शास्त्र की सेवा से आत्मप्राप्ति होगी—ऐसा नहीं कहा। पहले से ही आत्मा को जानने की अर्थात् अनुभव करने की बात कही है। ऐसे आत्मा को जानना, उसका अनुभव करना ही देव-गुरु-शास्त्र की सेवा है, क्योंकि देव-गुरु-शास्त्रों ने आत्मा का अनुभव करना ही कहा है।

आत्मा को जानना—श्रद्धना-अनुभवना, तीनों एक साथ होते हैं, वह आत्मा का सेवन है। भाई, ऐसा मनुष्य भव पाकर अपने आत्मा का परम आनंद प्रगट करने के लिये तू अपनी पर्याय द्वारा अपने अखंड आत्मा का सेवन कर। उसकी सेवा करने से अनंत गुणों का निधान दे—ऐसा यह चैतन्यराजा है।

परवस्तु तो भिन्न है, इसलिए उसकी सेवा की बात नहीं ली, राग की सेवा तो अनादिकाल से कर-करके दु:खी हो रहा है; क्षणिक पर्याय का या गुण-भेद का सेवन करना नहीं कहा, क्योंकि उस भेद में संपूर्ण आत्मा अनुभव में नहीं आता; इसलिए भेद के विकल्पों से पार जो ज्ञानानंद एक स्वरूप, उसे ज्ञान में—श्रद्धा में लेकर अनुभवना ही चैतन्यराजा की सच्ची सेवा है, वही मोक्ष के लिए सच्ची आराधना है। अहा, आत्मा स्वयं संपूर्ण चैतन्यस्वरूप तो है ही; परंतु 'मैं ऐसा हूँ'—ऐसी अनुभूति उसने कभी नहीं की, इसलिए उसने ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा कभी की ही नहीं। सत्समागम से बोधि प्राप्त करके, मोह-ग्रंथि तोड़कर जब सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट करे, तभी ज्ञानस्वरूप आत्मा की सच्ची सेवा होती है। ऐसे आत्मा की सेवा (ज्ञान, श्रद्धा, अनुभूति) के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से मोक्ष की सिद्धि नहीं होती; इसलिए मोक्षार्थी जीवों को ऐसे आत्मा को पहिचानकर उसी का सेवन करना चाहिए।

यहाँ आत्मा को 'जानना' कहा, वह साधारण परलक्ष्यी ज्ञातृत्व की बात कही है, परंतु अंतर के स्वानुभूति सहित ज्ञातृत्व की बात है। सचमुच तो जाना ही उसे कहा जाता है कि उसकी श्रद्धा करके अनुभव भी करे। अनुभूतिरहित ज्ञातृत्व वह सच्चा ज्ञातृत्व नहीं है।

भाई, यदि तुझे इस धधकते—जलते हुए संसार से बाहर निकलकर चैतन्य की अपूर्व शांति चाहिए तो तू आत्मार्थी बनकर आत्मा को अनुभव में ले। आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई इस कषाय की धधकती अग्नि से बचने का स्थान नहीं है। अज्ञान से जीव कषायाग्नि में जल रहा है। एकबार एक

हलवाई की उबलती हुई कढाई में ऊपर से एक साँप गिरा और आधा जल गया... उस जलन की वेदना से छूटने के लिए एकदम उछला तो नीचे धधकती हुई भट्टी में जा पड़ा और मर गया! उसी प्रकार यह संसारी जीव अज्ञानवश मोहभ्रांति से दु:खी हो रहे हैं। तेल की कड़ाही में गिरे हुए सर्प की भाँति दु:ख में जल रहे हैं... उसे छूटना तो चाहते हैं, परंतु किस प्रकार दु:ख से छूटा जा सकेगा ?—इसकी तो खबर नहीं है और अज्ञान से राग में-पुण्य में सुख मानकर फिर संसार के दावानल में ही सुलगते रहते हैं। उन्हें छुड़ाने के लिए संत करुणा करके शांति का मार्ग बतलाते हैं।

भाई! इस संसार के घोर दु:खों से छूटने के लिए तू ज्ञान-आनंद के धाम ऐसे अपने आत्मा को पहिचानकर उसकी सेवा कर। उसे पहिचानते ही उसकी ओर दृष्टि करते ही ऐसे आनंद की स्फुरणा होगी कि विकल्पों का और दु:खों का इन्द्रजाल तुरंत लुप्त हो जाएगा। तुझे अपने आनंद का स्वराज्य चाहिए तो अपने चैतन्यराजा को ही अपना मत देना, अन्य किसी को मत नहीं देना। मत अर्थात् मति-बुद्धि; अपनी बुद्धि को अपने चैतन्यतत्त्व की परम महिमा में लगाना। अहा! मेरा चैतन्यतत्त्व ही सबसे उत्कृष्ट है, उससे बड़ा दूसरा कोई नहीं है कि जिसे मैं अपना मत दूँ। इस प्रकार धर्मी अपनी मति के मत को अपने स्वभाव में ही युक्त करता है, उसी का आदर-प्रेम-बहुमान करके अनुभव में लेता है।

अहा, मेरे चैतन्य के आनंद की स्फुरणा होते ही विकल्पों का जाल तत्क्षण लुप्त हो जाता है। चेतना जहाँ विकल्पों से अत्यंत भिन्न हो गई है—ऐसी चेतनास्वरूप आत्मा मैं हूँ—ऐसा धर्मी अपना अनुभव करता है।

सुखी होना हो, उसे क्या करना चाहिए ? तो कहते हैं कि सर्व प्रथम वह आत्मा को जाने। '**मोक्षार्थिना प्रथमेव आत्मा ज्ञातव्य:....**' मोक्षार्थी को प्रथम ही आत्मा को जानना। जाना तभी कहा जाता है कि जिसे जानना है, उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव करे। अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ऐसा आत्मा ज्ञात होता है और उसे जानते ही अतीन्द्रिय आनंदसहित अनंत गुणों का

शुद्धता का अनुभव होता है। अहा, ऐसे अनंत सामर्थ्य की खान तू स्वयं है! तू अपना ही सेवन कर। आत्मोन्मुख होकर ज्ञान-श्रद्धान-अनुचरणरूप सेवा करते-करते आत्मा स्वयं मोक्षरूप परिणमित होता है। इसी प्रकार साध्य की सिद्धि है; अन्य किसी प्रकार साध्य की सिद्धि नहीं है।

आत्मा के ज्ञानपूर्वक उसका श्रद्धान और आचरण होता है। जाने बिना श्रद्धा किसकी? और स्थिर कहाँ होना? आत्मा को जानने पर ज्ञाता-ज्ञेय का विकल्प भी नहीं रहता, ज्ञान तो विकल्प से भी पार है। ज्ञान और श्रद्धा तथा उस काल निर्विकल्प अनुभूति—यह सब एक साथ ही है। प्रथम आत्मा को जानना और फिर उसकी श्रद्धा करना—ऐसा कहकर ज्ञान-श्रद्धा का कालभेद नहीं बतलाना है परंतु ज्ञानपूर्वक श्रद्धा बतलाना है। चैतन्य की जैसी अनंत-अचिंत्य महिमा है, वैसी ज्ञान में बराबर लेकर उसकी श्रद्धा होती है; इसलिए कहा है कि प्रथम जानकर उसकी श्रद्धा करना। ऐसे ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक ही आत्मा नि:शंकरूप से अपने स्वरूप में स्थित होता है और शुद्ध आत्मा की सिद्धि होती है।

आत्मा का पूर्णस्वरूप जहाँ ज्ञान में आया, वहीं उसकी श्रद्धा हो जाती है कि—'यह मैं!'—इस प्रकार स्वसंवेदनपूर्वक ज्ञान और श्रद्धा एक साथ ही प्रगट होते हैं। इसका नाम आत्मा की सेवा है।—ऐसी सेवा द्वारा चैतन्य राजा प्रसन्न होता है अर्थात् मोक्ष साधता है।

जो आत्मा का अर्थी हुआ है, उस जीव को सीधा ही आत्मा का अनुभव करना कहा है। पहले निर्णय करना और फिर अनुभव करना—ऐसे दो भेद नहीं लिए। सत्य आत्मा का ज्ञान, निर्णय और अनुभव एक साथ ही है। चैतन्यानुभूति ही आत्मा है। चैतन्यरूप से जो सदा सबको अनुभव में आता है, उस चैतन्यस्वरूप ही आत्मा है। 'यह चैतन्य... चैतन्य...' इस प्रकार चैतन्यभावरूप से जो अनुभव में आता है, वही मैं हूँ; इस प्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा को जानकर उसकी श्रद्धा करना और नि:शंकता से चैतन्यरूप ही अपने को अनुभवना, वह आत्मराजा के सेवन की रीति है। ऐसी सेवा द्वारा मोक्ष की सिद्धि होती है।

चैतन्यभाव रागादि से पृथक् अनुभव में आया कि 'ऐसा चैतन्यभाव मैं'—वह निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से अनुभव हुआ है; यह मोक्ष को साधने की अपूर्व कला है। यह तो उस मोक्षार्थी जीव की बात है जो अनुभव में लिए तैयार हुआ है। महा मोक्षसुख—जो अनंत काल तक बना रहे, उसका उपाय भी अलौकिक ही होता है; वह ऐसा नहीं होता कि साधारण शुभराग के भाव से प्राप्त हो जाए। आत्मा का जैसा महान स्वरूप है, वैसा ही ज्ञान में आये, तभी वह सधता है। जितना महान है, उतना महान न मानकर किंचित् भी न्यून माने, उसे रागवाला-पर के साथ संबंधवाला माने तो सच्चा आत्मा उसके ज्ञान में नहीं आ सकता, ज्ञान के बिना उसकी सच्ची श्रद्धा भी नहीं हो सकती और वस्तु का ज्ञान-श्रद्धान किए बिना उसमें स्थित रहनेरूप आचरण भी नहीं हो सकता। इस प्रकार आत्मा को जाने बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती।

चैतन्यस्वरूप वह आत्मा का अबाध्य स्वरूप है; उसे आत्मा में से कम नहीं किया जा सकता। दूसरा सब कुछ आत्मा में से निकाला जा सकता है; शरीर-मन-वाणी-देव-गुरु-शास्त्र-राग के विकल्प आदि सबको निकाल देने पर भी उनके बिना आत्मा स्थित रह सकता है, परंतु चैतन्यभाव के बिना आत्मा नहीं रह सकता; इस प्रकार सबको निकाल देने पर अंत में जो चैतन्यभावरूप से अनुभव में आता है, वही मैं हूँ—ऐसा अनुभव करना, वह आत्मप्राप्ति की रीति है। आत्मा ऐसी वस्तु है कि यह चैतन्यरूप से ही अनुभव में आता है, अन्य किसी भाव से अनुभवना चाहे तो आत्मा अनुभव में नहीं आ सकता।

भाई, यह तो मोक्ष के द्वार में प्रवेश करने की बात है; चैतन्य महाराज से मिलने की बात है। मैं कोई चाकर या भिखारी नहीं हूँ, परंतु मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ; इस प्रकार राजा होकर स्वयं अपना सेवन करने की बात है। अरे, आत्मा का अनुभव करने के लिए राग की मदद माँगना कहीं चैतन्य को शोभा देता है ? मुझे किसी की मदद चाहिए, मुझे राग की आवश्यकता है, इस प्रकार जो दीनता करता है, वह तो कायर है; ऐसे कायर जीव आत्मराजा

से भेंट नहीं कर सकते, उसका अनुभव नहीं कर सकते। यह तो शूरवीरों का काम है; वीतराग का मार्ग ही शूरवीरों का है। मुझे अपने आत्मअनुभव में पर का आश्रय है ही नहीं; विकल्प का आश्रय मुझे नहीं है; स्वाधीनरूप से अपनी चेतना द्वारा ही मैं अपने आत्मा का अनुभव करता हूँ—ऐसे अनुभव द्वारा मोक्ष के द्वार में प्रवेश होता है।

अनुभूति होने पर प्रतीति हुई कि 'यह चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हूँ', पर्याय में ज्ञान, राग आदि अनेक भाव मिश्र हैं, परंतु उसमें विवेकबुद्धि द्वारा अर्थात् भेदज्ञान की अत्यंत सूक्ष्मता द्वारा अन्य सर्वभावों को भिन्न करके जो यह मात्र चैतन्यस्वरूप परम शांत तत्त्व अनुभव में आता है, वही मैं हूँ—ऐसा आत्मज्ञान होता है; ऐसे आत्मज्ञान में जो आत्मा ज्ञात हुआ, वही मैं हूँ—ऐसी नि:शंक श्रद्धा होती है; ऐसे ज्ञान और श्रद्धापूर्वक आत्मा में स्थिर होने पर आत्मा की सिद्धि होती है।

अपने आत्मा का ऐसा अनुभव करना, वह कोई असंभव नहीं है, वह संभव है, हो सकता है और वही हमें करना है।—ऐसी स्वीकृतिपूर्वक चैतन्यस्वरूप आत्मा का अनुभव हो सकता है। धर्मी को ऐसा अनुभव हुआ है; पहले भी आत्मा तो ऐसी अनुभूतिस्वरूप ही था, कहीं परभावरूप नहीं हुआ था, परंतु अज्ञानदशा में अपने को रागादिभावरूप ही मानकर उसी की सेवा करता था, राग से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा की सेवा एक क्षण भी नहीं की थी; अब परभावों से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा की सेवा की... जिससे उसे साध्य आत्मा की सिद्धि हुई, मोक्षमार्ग प्रगट हुआ। वह जानता है कि अहा! अब हम चैतन्यस्वरूप ही हैं; उसे जानकर अब सततरूप से अनंत चैतन्य-चिह्नरूप ही हम अपना अनुभव कर रहे हैं। चैतन्यस्वरूप आत्मा की ऐसी अनुभूति से उच्च अन्य कोई नहीं है। ऐसी अनुभूति द्वारा हमें अपने साध्य आत्मा की सिद्धि हुई है। अन्य किसी उपाय द्वारा साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती।

राग में जिसे एकत्वबुद्धि है, वह राग से पृथक् होकर चैतन्य में स्थिर होने की शक्ति कहाँ से लाएगा? अभी जो राग से भिन्न चैतन्य को नहीं जानता, वह उसे साधेगा कहाँ से? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है; आबाल-वृद्ध सभी जीव ज्ञानस्वरूप ही हैं, भगवान आत्मा तो स्वयं सदा ज्ञानरूप ही अनुभव में आता है; परंतु 'यह जो ज्ञान है, सो मैं हूँ'—ऐसा वे नहीं जानते और अपने को रागादि भावों के साथ एकमेक अनुभव करते हैं, इसलिए वे जीव राग से भिन्न ऐसे साध्य आत्मा को नहीं साध सकते। परभावों से भिन्न, चेतनास्वरूप आत्मा का अनुभव, वही आत्मा को साधने की रीति है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

साहित्य में छूट

अध्यात्म त्रिपाठ संग्रह	05.00/-
मंगल महोत्सव प्रवचन	10.00/-
दीपावली प्रवचन	10.00/-
पंच कल्याणक प्रवचन	10.00/
दशधर्म प्रवचन	15.00/-
विषापहार प्रवचन	15.00/-
वह घड़ी कब आयेगी?	15.00/-
स्वतंत्रता की घोषणा	18.00/-
स्वाधीनता का शंखनाद	18.00/-
भक्तामर रहस्य	20.00/-
जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग-7	40.00/-
पंचास्तिकाय संग्रह	50.00/-
छहढाला (अंग्रेजी)	100.00/-

तीर्थधाम मङ्गलायतन में 50 प्रतिशत छूट पर साहित्य उपलब्ध है। आप मँगवा सकते हैं।

सम्पर्क : श्री अशोक जैन, मोबा. 9997996346

हे जीव! ऐसे चैतन्यस्वभाव का अनुभव कर —कि जिसमें किसी परभाव का प्रवेश नहीं है

[पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का श्री समयसार कलश-11 पर प्रवचन]

आत्मा का शुद्धस्वरूप बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि—हे जगत के जीवो! भीतर तुम्हारा आत्मा ज्ञान-आनंदस्वरूप विद्यमान है, उसमें प्रवेश करके उसका सम्यक्रूप से अनुभव करो। यह जो शरीर दिखाई देता है, वह तो जड़-पुद्गल का पिण्ड है; रागादिभाव हैं, वे भी परभाव हैं, वे कहीं चैतन्य के भाव नहीं हैं; चैतन्य के स्वरूप में उन रागादि का प्रवेश नहीं है; रागादिभाव आत्मा में प्रतिष्ठा—शोभा नहीं पाते; आत्मा की शोभा उन रागादि द्वारा नहीं है; आत्मा की प्रतिष्ठा—शोभा तो चैतन्यस्वरूप में ही है। ऐसे आत्मा का तुम सम्यक् प्रकार से अनुभव करो!

भाई, तेरी सच्ची वस्तु तो ऐसी चैतन्यमय है, उसके अनुभव द्वारा ही आनंद की प्राप्ति हो सकती है। राग का अनुभव कर-करके तू अनादि से दु:खी हो रहा है।

कहे महात्मा, सुन आत्मा, कहूँ बात में बीतक सही;
संसार सागर दु:खभरे में अवतरित हुआ कर्म करी।

आत्मा को भूलकर तू इस दु:ख भरे संसार में असह्य दु:ख भोग रहा है। चैतन्यसुख को चूककर तू परवस्तु में सुख मानकर उसी में मोहित हो रहा है। भाई! अब इस संसार के दु:खों से छूटने के लिए तू आत्मा की पहिचान कर।

धर्मी जीव अपने आत्मा के अतिरिक्त संसार की अन्य कोई वस्तु नहीं माँगते। मेरा चैतन्यतत्त्व राग से पार है, उसका अनुभव करने पर चैतन्य में से अमृतरस झरता है... ऐसा तत्त्व ही मैं हूँ, अन्य कुछ मेरा नहीं है।

अहा, एक बार परभाव से भिन्न होकर तू अपने आत्मा का अनुभव तो कर देख! तू कृतकृत्य हो जाएगा। अज्ञानभाव से अपनी चैतन्यवस्तु का ही अस्वीकार करके अज्ञानी जीव महान भावहिंसा करता है, वह भावमरण है।

उससे छुड़ाने के लिए संत करुणापूर्वक कहते हैं कि—हे भाई! यह शरीर तो रजकणों से निर्मित है और यह राख होकर धूल में मिल जाएगा, यह तू नहीं है; तू तो अविनाशी चैतन्यतत्त्व है; तू इन्द्रियों से पार अतीन्द्रियस्वरूप है। अरे, अपनी महान लक्ष्मी को भूलकर तू रागादि और संयोगादि द्वारा बड़प्पन लेना चाहता है तो तू गरीब-भिखारी है। दूसरों के पास भीख कौन माँगता है ?.... जो भिखारी हो वह। जो आत्मा अपने सुख के लिए परवस्तु की इच्छा करता है (-चाहे वह एक पैसा माँगता हो या करोड़ों रुपये चाहता हो), वह भिखारी है; और जो स्वयं अपने सुख-स्वभाव का अनुभव करता है, किसी भी परवस्तु की इच्छा नहीं करता, वह महान चैतन्यवैभव संपन्न महाराजा है।

मेरी चैतन्यवस्तु में राग भी नहीं है, वहाँ परवस्तु कैसी है ? मैं स्वयं ही भगवान जगत में सर्वश्रेष्ठ चैतन्यराजा हूँ। ऐसे सम्यक्स्वभावी आत्मा का अनुभव करो। अनंत जीव ऐसा अनुभव कर-करके मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं; इसलिए मुश्किल समझकर तू यह बात निकाल मत देना; कठिन लगे या सरल लगे, परंतु इस रीति और इस उपाय द्वारा आत्मा के सत्य स्वभाव का अनुभव करने से ही इस भवदु:ख का अंत आ सकता है; दूसरा तो कोई दु:ख से छूटने का उपाय नहीं है। शुभ-अशुभ जो भी उपाय करेगा, वे सब सुख के लिए व्यर्थ हैं; अनादि से वे सब करने पर भी किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, सच्चा उपाय उनसे भिन्न है। राग से भिन्न, राग का जिसमें प्रवेश नहीं है, राग द्वारा जो जाना नहीं जा सकता, जो अपने ज्ञानगम्य है—ऐसे आत्मा को जानकर उसका अनुभव करने पर तुझे महाआनंद होगा।

भाई, तू देख कि रागादि वृत्तियाँ तो बाह्योन्मुख होती हैं और ज्ञान का वेदन राग से भिन्न अंतर्मुख होता है। ऐसे ज्ञान का वेदन रागरहित हे। उसका अनुभव करके हे जीव! तू चैतन्य के आनंद में लीन हो। सांसारिक संकल्पों के जाल से बाहर निकलकर एक बार तो निर्विकल्प होकर अपने आनंदमय तत्त्व को देख! तेरे स्वसंवेदन में कोई परभाव नहीं आते। किसी राग की,

किसी विकल्प की ऐसी शक्ति नहीं है कि तेरे चैतन्य के साथ एकमेक होकर रहे। वे विकल्प तेरे चैतन्यभाव से भिन्न के भिन्न बाहर ही रहते हैं। ऐसे चैतन्यस्वरूप तू है। राग का आधार कहीं तेरा चैतन्यतत्त्व नहीं है; तेरे चैतन्यतत्त्व के आधार से कहीं राग को-संसार की उत्पत्ति नहीं होती, चैतन्य -आधार से तो वीतरागी आनंद का अनुभव होता है। एक बार अंतर की गहराई में उतरकर ऐसा अनुभव कर देख... तुझे मोक्ष का परमसुख अपने में ही दिखाई देगा। [आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

भगवान का संदेश

मुझे यह जो शुद्ध आत्मा के स्वसंवेदनपूर्वक अनुभूति हुई—वह मैं ही हूँ। पर्याय अंतरोन्मुख हुई और शुद्धस्वरूप का आनंदमय अनुभव हुआ वह मैं ही हूँ। उस अनुभूति से भिन्न आत्मा नहीं है। सम्यग्दर्शन ऐसे अनुभवपूर्वक होता है।

ऐसी अनुभूति करना, वह भगवान का संदेश है। ऐसी अनुभूति की, तब सच्चा आत्मा दृष्टि में-ज्ञान में-अनुभव में आया और उसने भगवान का सीधा संदेश सुना है। ऐसी अनुभूति के बिना आत्मा लक्ष्यगत नहीं होता, और आत्मा लक्षगत हुए बिना भगवान के संदेश को समझ कैसे कहा जाए? जिसने आत्मा की ऐसी अनुभूति की, उसने भगवान के संदेश को, भगवान के उपदेश को, जिनशासन को जाना है।

ऐसी अनुभूति में जो गंभीर तत्त्व आया, वह मैं ही हूँ; अनंत गुण की शुद्धता के वेदन का समावेश उस अनुभूति में एकसाथ होता है। चैतन्यराजा अपने अनंत गुण के वैभवसहित स्वानुभूति में शोभायमान होता है।

शिष्य को आत्मा की अनुभूति के अतिरिक्त अन्य कोई अभिलाषा नहीं है। श्री गुरु ने ऐसा महान आत्मा बतलाया, उसकी अनुभूति कैसे हो, यह एक ही उत्कंठा है... और संत-मुनि उसे भगवान का संदेश सुनाते हैं।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

पाँच रत्नों द्वारा आत्मा के परमस्वभाव की भावना

[पूज्य गुरुदेवश्री के श्री नियमसार, गाथा 77 से 81 पर प्रवचन का सार]

परमार्थ प्रतिक्रमण के इन पाँच रत्नों द्वारा समस्त परभावों से रहित ऐसे आत्मा के परम-स्वभाव की भावना भाते हैं। परभाव का जिसमें अभाव है, ऐसे सहज चैतन्यविलासस्वरूप आत्मा को जानकर उसकी भावना में एकाग्र होने से समस्त परभावों का प्रतिक्रमण हो जाता है; ऐसे आत्मा की भावना बिना परभावों का सच्चा प्रतिक्रमण नहीं होता; इसलिए प्रारम्भ में ही आत्मा के परमस्वभाव में सर्व परभावों के कर्तृत्व का अभाव बतलाते हैं। मैं सहज चैतन्यविलासरूप हूँ, नारकादि विभावपर्यायें मुझमें नहीं हैं, उनका मैं कर्ता नहीं हूँ।

नारकादि पर्यायें, मार्गणास्थान, गुणस्थान, जीवस्थानरूप अशुद्ध दशाएँ, बाल-वृद्ध-युवावस्थाएँ, राग-द्वेष-मोह या क्रोध-मान-माया-लोभ, इन समस्त परभावों का कर्तृत्व मेरे परमस्वभाव में नहीं है। अहा, एक ओर अकेला परमस्वभाव, तथा दूसरी ओर समस्त परभाव; जहाँ सहज परमस्वभावोन्मुख होकर उसकी भावना की, वहाँ समस्त परभावों का उसमें अभाव है।—ऐसा सहज चैतन्यतत्त्व मैं हूँ; इस प्रकार धर्मी जीव अपने शुद्धतत्त्व की भावना करता है। ऐसी भावना वह मोक्ष का कारण है।

अंतर्मुख होकर जो परम स्वभाव में आया, वह परभावों से विमुख हुआ, उसे शुद्धात्मा कहा जाता है और उसी ने परमार्थ प्रतिक्रमण किया है। जो 'मैं' नहीं हूँ, उसका कर्तृत्व मुझे कैसे होगा? मैं तो सहज चैतन्य परमभाव हूँ, चैतन्य के परमभाव की अनुभूति में कोई परभाव है ही नहीं, इसलिए मुझे उन किन्हीं भावों का कर्तृत्व नहीं है, उनका करानेवाला या अनुमोदन करनेवाला मैं नहीं हूँ—ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मी को सच्चा प्रतिक्रमण है। परभावों में स्थित रहकर उनका प्रतिक्रमण कैसे होगा? जो स्वभाव में आया, वह परभावों से विमुख हुआ। धर्मी नरक गति में हो, तथापि अपने आत्मा को नारकादि गतिरहित शुद्धस्वरूप से स्वीकार करता है; उसकी श्रद्धा में ऐसा नहीं है कि मैं नारकी हूँ; वह तो अपने को सहज

चैतन्यस्वरूप ही स्वीकार करता है और उस चैतन्यभाव में नारकादिभाव का अभाव है। धर्मी का शुद्ध चैतन्यभाव नरकादि चार गतियों का बंध भी नहीं करता और उन्हें भोगता भी नहीं है। चार गतियों के कारणरूप शुभाशुभभाव ही चेतना में कहाँ है? सम्यग्दृष्टि को अभेद आत्मा की जो अनुभूति है, उसमें चार गतियाँ या उनके कारणरूप भाव तो नहीं हैं, तथा ज्ञानमार्गणा के भेद आदि भेद भी उसमें नहीं हैं उस अनुभूति में तो एक सहज चैतन्य-विलासरूप आत्मा ही प्रकाशमान है। धर्मी को भेद के विकल्पों का ग्रहण नहीं है, उसने तो अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप में ही चित्त को एकाग्र किया है; अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त समस्त परभावों का परिग्रह उसके नहीं है। इस प्रकार निजभावों से भिन्न सकल अन्य भावों को छोड़कर वह अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करता है।

धर्मी का ध्येय कैसा आत्मा है, उसका यह वर्णन है। ऐसे आत्मा को जानकर उसके अनुभव में चित्त को लगाया, वहाँ सर्व परभावों से प्रतिक्रमण हो गया। ऐसे आत्मा के ग्रहण बिना परभावों का त्याग नहीं होता। इन्द्रियाँ मुझमें हैं ही नहीं, वहाँ इन्द्रियों का आलम्बन कैसा? इन्द्रियातीत ज्ञान द्वारा जो जानने में आये, वह मैं हूँ। ऐसे आत्मा में उपयोग लगाने से ज्ञान में भेद-विकल्प नहीं रहते, अभेद अनुभूति जमती है। ऐसी अनुभूति जमी, वहाँ अतीन्द्रिय आनंद का वेदन है। आत्मा स्वयं अपने में जम गया... लीन हो गया, वहाँ कोई परभाव उसमें नहीं रहे। ऐसी परिणतिरूप आत्मा परिणमित हो, उसे परमार्थ प्रतिक्रमण कहा जाता है।

परिणति अपने अकषायस्वभाव में अभेद होकर परिणमित हुई, वहाँ उसमें कषाय कैसा? और दुःख कैसा? उसमें जनम-मरण कैसे? और शरीर कैसा? द्रव्य में कषाय नहीं है—ऐसा स्वीकार करनेवाली दृष्टि में भी कषाय नहीं है; इसलिए द्रव्य और पर्याय दोनों शुद्ध हैं।—ऐसे स्वतत्त्व का धर्मी अनुभव करता है; फिर पर्याय में कुछ रागादिभाव रहें, उन्हें वास्तव में परज्ञेयरूप जानता है। अहा, ऐसा मेरा भगवान आत्मा! वह अब मेरे अनुभव में आया; अब कोई परभाव मुझे अपनेस्वरूप भासित नहीं होते। मैं तो एक

परमस्वभावी हूँ, भेद का विषय मैं नहीं हूँ; द्रव्य-गुण-पर्याय के भी भेद रहित एक अभेद परमभावरूप से अनुभव में आया, वह मैं हूँ; सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें ऐसा आत्मा साक्षात् हुआ है, स्पष्ट नि:शंक अनुभव में आया है।

भाई, संत जो स्वरूप बतलाते हैं, वह तू है। तेरा स्वरूप स्वयं ऐसा महान है—वही संत कहते हैं। ऐसा स्वरूप समझकर अनुभव में लेना ही मोक्ष का सरल मार्ग है, दूसरा तो कोई मार्ग ही नहीं है। आत्मा के अनुभव की यह कला ही धर्म की अपूर्व विद्या है।

चैतन्यस्वरूप ऐसा जो मैं-परमभाव, उसमें गुणस्थान के भेद नहीं हैं; भेद के विकल्पों का मैं कर्ता नहीं हूँ, उसका मुझे अनुमोदन नहीं है, उसका मैं कारण नहीं हूँ। मेरा कर्तापना, कारणपना या अनुमोदनपना अपनी सहज चैतन्य अनुभूति में ही समाया है; उससे बाहर किन्हीं भंग-भेदों में मैं नहीं हूँ।—ऐसा धर्मी अनुभव करता है। भेद-विकल्प, वह मैं हूँ ही नहीं, तो फिर जो मैं नहीं हूँ, उसका कर्ता मैं क्यों होऊँ ?

सहज ज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप मैं हूँ—ऐसा मैं भाता हूँ अर्थात् ऐसे स्वरूप ही आत्मा को अनुभवता हूँ। मेरे सहज चैतन्य-विलास में कोई पुण्य-पाप नहीं हैं, इसलिए उनके फलरूप चार गतियाँ मुझे नहीं हैं, उनका कर्ता मैं नहीं हूँ।

एक ओर परम ज्ञानतत्त्व, दूसरी ओर रागादि समस्त परभाव। परम ज्ञानतत्त्व से सर्व परभाव बाह्य हैं। जो अंतर्मुख होकर ज्ञानतत्त्व का अनुभव करता है, उसकी अनुभूति में गुणस्थान-मार्गणास्थान संबंधी किन्हीं परभावों का अस्तित्व ही नहीं है। इसलिए उनका कर्तापना नहीं है। धर्मी की स्वसत्ता तो आनंदमय चैतन्यविलास से परिपूर्ण है। ऐसी चैतन्यसत्ता में जड़ शरीर कैसा और राग कैसा ?—तो फिर उस जड़ शरीर से और राग से जीव को धर्म हो—यह बात भी कैसी ? अहा, मेरा तत्त्व सर्व भेद-भंगरूप व्यवहार के विकल्पों से निरपेक्ष है; परभावों से पृथक् मेरा सहज तत्त्व है, उसी को मैं भाता हूँ। देखो, भेदज्ञान द्वारा ऐसे तत्त्व की भावना से वीतरागता होती है और चारित्र प्रगट होता है—ऐसा इन पाँच गाथाओं के बाद तुरंत (82वीं गाथा में) कहेंगे।

भेदज्ञान द्वारा राग और देहादि से भिन्न चैतन्यतत्त्व को जो भाये, उसी को उसका कर्तृत्व छूटकर मध्यस्थतारूप वीतरागता होती है, और उसी को चारित्रदशा प्रगट होती है। परंतु शरीर की क्रिया का या राग के एक विकल्प का भी कर्तृत्व (उसकी रुचि) जिसे हो, उसे उसमें मध्यस्थता नहीं होती, और मध्यस्थता के बिना वीतरागता नहीं होती; वीतरागता के बिना चारित्रदशा नहीं होती। इस प्रकार भेदज्ञान के बिना अर्थात् शुद्धात्मा की भावना के बिना कभी चारित्र नहीं होता। अहो, जैनमार्ग कोई अलौकिक है... यह तो अंतर में चैतन्य का वीतरागी मार्ग है।

इस प्रकार पाँच रत्नों जैसी इन पाँच गाथाओं में कहे हुए भेदज्ञान की भावना द्वारा जिसने अपने सहज चैतन्यतत्त्व को समस्त परभावों से भिन्न किया है, भेदज्ञान द्वारा समस्त विषयों की और परभावों के ग्रहण की चिंता को छोड़ दिया है और अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को ही ग्रहण किया है, ऐसा भव्य जीव अल्प काल में ही मुक्ति को प्राप्त करता है। भेदज्ञान की भावना का यह फल है। अध्यात्मरस की अपूर्व धारा भेदज्ञान में बहती है।

धर्मी ने भेदज्ञान द्वारा दो विषयों को भिन्न कर दिया है—एक ओर अंतर में शुद्ध अभेद स्वविषय; तथा दूसरी ओर समस्त परविषय—ऐसे भेदज्ञान द्वारा शुद्ध स्वविषय का ग्रहण किया और समस्त परविषयों का ग्रहण छोड़ दिया।—ऐसा करे, तब मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण करके जीव सम्यग्दृष्टि होता है। परविषय में तो शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य सब कुछ आ गया। किसी भी परवस्तु को विषय बनाकर जो शुभवृत्ति उठती है, वह भी आत्मा का स्वविषय नहीं है, उसे भी परविषय जानकर धर्मी छोड़ता है, अर्थात् स्वविषय से भिन्न जानता है। जिसे भिन्न जानेगा, उसका कर्तृत्व कैसे होगा? उसकी भावना कैसे होगी? उसका ग्रहण करने की वृद्धि कैसे होगी? इस प्रकार धर्मी को समस्त परविषयों को ग्रहण करने की बुद्धि छूट गई है और शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायरूप एक स्ववस्तु का ही ग्रहण है, उसी में एकाग्रचित्त द्वारा वह परम आनंद का अनुभव करता है और मोक्ष को साधता है।

ऐसे आत्मा के अनुभव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मलपर्याय के अभेदरूप भावलिंग भी नहीं है। अनुभव में निर्मलपर्याय होती है अवश्य, परंतु 'यह द्रव्य और यह मेरी निर्मल पर्याय'—ऐसे भेद एक अभेद वस्तु में नहीं है। अभेद में भेद पैदा करने से विकल्प उठते हैं और आकुलता होती है, वहाँ अन्य बाह्यविकल्पों की तो बात ही क्या ? विकल्प तो आकुलता की भट्टी है, चैतन्य की शांति उनमें नहीं है। शांतरस के पिण्डरूप मेरा चैतन्यतत्त्व, वह विकल्प की अशांति में कभी नहीं आता। सुख के समुद्र में मग्न हुआ आत्मा आकुलता का कर्ता क्यों होगा ? अहा, ऐसा चैतन्यतत्त्व.... उसे लक्ष्य में लेने से परम आनंद होता है। इस प्रकार ऐसा तत्त्व भीतर लक्ष्य में तो लो। उसे लक्ष्य में लेने से एक क्षणमात्र में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और महान आनंद होगा।

जिसने स्वानुभव से ऐसे निजतत्त्व को जाना, उसने सब जान लिया। और जिसने निजतत्त्व को नहीं जाना, उसका सब ज्ञातृत्व निष्फल है—

जब जाना निज रूप को तब जाना सब लोक;
जाना नहि जिन रूप को तो सब जाना फोक।

भाई, परभावों से भिन्न अपने शुद्ध स्वतत्त्व को जाने बिना तू परभावों को किसप्रकार छोड़ेगा ? अपनी दृष्टि में स्वतत्त्व को ग्रहण करे, तभी परविषयों के साथ की एकताबुद्धि छूटे अथात् मिथ्यात्वादि का प्रतिक्रमण हो।

अंतर्मुख अवलोकन द्वारा ही मोह-विकल्प छूटते हैं—

उपजे मोह-विकल्प से समस्त यह संसार,
अंतर्मुख अवलोकते विलय होत नहि वार॥

अंतर्दृष्टि करते ही तेरे समस्त परभाव छूट जाएंगे और अपना शुद्धस्वरूप तेरे अनुभव में आएगा। निर्मल पर्याय हो, वह भीतर शुद्धस्वरूप के साथ अभेद होती है; स्वसन्मुखता से आत्मा निर्मलपर्याय में अभेदरूप से परिणमित होता है और रागादि परभावों से भिन्नता हो जाती है, इसी का नाम भेदज्ञान है। ऐसे भेदज्ञान की भावना द्वारा अल्पकाल में चारित्रदशा प्रगट करके जीव मुक्ति को प्राप्त करता है। [आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-13, वर्ष-27]

(1) मूर्ख सिंह और चालाक बंदर

आत्मा सिंह की भाँति शूरवीर है; परंतु वह अपने को भूलकर अज्ञान से कैसा दु:खी होता है—यह बात यह बोधचित्र हमें समझाता है।—

किसी जंगल में एक सिंह रहता था; उसे भूख लगने से वह खुराक की खोज में निकला। दोपहर था। एक वृक्ष पर बंदर बैठा था; जिसकी छाया नीचे जमीन पर पड़ रही थी। सिंह ने सोचा–मुझे अच्छा शिकार मिल गया और उसने बंदर की परछाईं पर झपट्टा मारा। तब डाल पर बैठे हुए बंदर ने कहा—अरे वन के राजा! मैं तो यहाँ डाल पर बैठा हूँ; उस परछाईं में कहीं मैं नहीं हूँ; परछाईं से तेरा पेट नहीं भरेगा; इसलिए व्यर्थ का श्रम मत कर! छाया पर झपट्टे मारने से तेरे हाथ में कुछ नहीं आयेगा।

उसी प्रकार जगत का राजा ऐसा यह चैतन्यसिंह आत्मा; इसे सुख की भूख लगी है; यह छाया जैसे बाह्य–विषयों में से सुख लेना चाहता है और उन विषयों में झपट्टे मार–मारकर दु:खी होता है। तब सूर्य–प्रकाश की भाँति जिनको ज्ञान–प्रकाश हुआ है, ऐसे संत उसे समझाते हैं कि अरे जीव! सुख तो तेरे आत्मा में है; परछाई जैसे शरीर में या विषयों में कहीं सुख नहीं है, इसलिए तू बाह्य में सुख की खोज मत कर। बाह्य इन्द्रिय–विषयों में चाहे जितने झपट्टे मारने पर भी उनमें सुख नहीं मिलेगा।

इस प्रकार यह चित्र भेदज्ञान कराके सुख का सच्चा मार्ग बतलाता है।

(2) चालाक सिंह और मूर्ख बंदर

[आपने अभी जो कथा पढ़ी, उसमें जो बंदर और सिंह थे, उनकी अपेक्षा इस दूसरी कथा में दूसरा बंदर और दूसरा सिंह है। पहली कथा में सिंह मूर्ख था और बंदर चालाक था, इस दूसरी कथा में बंदर मूर्ख और सिंह चालाक है। भेदज्ञानरूपी तात्पर्य तो दोनों कथाओं में से एक-सा निकलता है। यह कथा गुरुदेव के प्रवचन पर से लिखी है।]

किसी वृक्ष पर एक बंदर रहता था; वहाँ एक सिंह आया। सिंह को बंदर का शिकार करने की इच्छा हुई। ऊपर बैठा हुआ बंदर उसकी पकड़ में आना असंभव था; लेकिन सिंह बड़ा चालाक था; उसने देखा कि यह बंदर नीचे पड़ती हुई छाया को अपनी मान रहा है; इसलिए उसने बंदर के सामने देखकर जोर से गर्जना की और नीचे उसकी छाया पर पंजा मारा। छाया पर पंजा पड़ते ही बंदर तो भयभीत हो गया कि—अरे रे! सिंह ने मुझे पंजा मार! और वह घबराकर नीचे गिरा! लेकिन उस मूर्ख को खबर नहीं है कि पंजा तो मेरी छाया को मारा है, मैं तो छाया से दूर (वृक्ष पर) सुरक्षित बैठा हूँ। देखो, अज्ञान के कारण छाया को अपनी मानकर मूर्ख बंदर ने अपने प्राण गँवा दिए।

उसी प्रकार जीव की छाया जैसा यह जड़ शरीर, उसमें रोगादि होने से या मृत्युरूपी सिंह का पंजा पड़ने से बंदर की भाँति मूर्ख अज्ञानी जीव अपना ही मरण समझकर भयभीत होता है कि हाय! मैं मर गया, मुझे रोग हुआ... आदि।

परंतु भाई! वह सब तो शरीर में है, तुझमें नहीं है। तू शरीर से भिन्न अरूपी शाश्वत चैतन्यमूर्ति है; चैतन्य के ऊँचे वृक्ष पर तेरा आत्मा सुरक्षित है, तेरा चैतन्य जीवन अमर है, तुझे कोई मार नहीं सकता।—इसप्रकार यह चित्र ऐसा बोध देता है कि हे जीव! तू शरीर से भिन्न आत्मा को जानकर निर्भय हो! आत्मा का मरण ही नहीं है, फिर भय कैसा?

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-11-12 (अप्रेल-1972), वर्ष-27]

भगवान आचार्यदेव
श्री सिद्धसेन : दीक्षा नाम कुमुदचंद्राचार्य

आचार्यदेव सिद्धसेनस्वामी महाकवि तथा तर्क व न्याय के महाज्ञाता होने से महा दार्शनिक भी थे। यद्यपि सिद्धसेन नामक जैन परंपरा में बहुत विद्वान हुए हैं, उनमें आप अनूठे ही थे, इसलिए ही आपको महाकवि की भाँति वादिगजकेसरी भी माना जाता है।

आदिपुराण के रचनाकार आचार्य जिनसेनस्वामी व पद्मपुराण के रचनाकार आचार्य रविषेणस्वामी ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसी भाँति कई आचार्यों ने आपका सन्मान से स्मरण किया है। तात्पर्य यह है कि कवि व न्याय के विद्वान आचार्य के रूप में पश्चात्वर्ती आचार्यों में आपकी बहुत ही ख्याति थी।

कहा जाता है कि आप उज्जयिनी नगरी के कात्यायन गोत्रीय देवर्षि ब्राह्मण की देवश्री पत्नी के पुत्र थे। आप प्रतिभाशाली और समस्त शास्त्रों के पारंगत विद्वान थे। वृद्धवादि जब उज्जयिनी नगरी में पधारे, तो उनके साथ सिद्धसेन का शास्त्रार्थ हुआ। सिद्धसेन वृद्धवादि से बहुत प्रभावित हुए और उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

गुरु ने दीक्षा नाम कुमुदचंद्र रखा था व आपके गुरु का नाम धर्माचार्य था।

दिगम्बर आचार्य कि जो 'सन्मतिसूत्र' व 'कल्याणमंदिर' स्तोत्र के रचयिता हैं, वे सिद्धसेन आचार्य और श्वेताम्बर के न्यायावतार ग्रंथ के रचयिता सिद्धसेन दिवाकर से ये सिद्धसेन आचार्य भिन्न हैं। अत: ये सिद्धसेन आचार्य मात्र [1]आचार्य सिद्धसेन के नाम से जाने जाते हैं, जबकि 'श्वेताम्बर सिद्धसेन', 'सिद्धसेन दिवाकर' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

---

1. कहीं कहीं दिगम्बर आचार्य सिद्धसेनजी के लिए, वे सूर्यसमान होने से 'दिवाकर' ऐसी उपमा भी लगाने में आती थी।

फिर भी माना जाता है, दिगम्बर सिद्धसेन आचार्य जब श्वेताम्बर की मान्यता धारक थे, तब उन्होंने प्राकृत श्वेताम्बर आगमों को संस्कृत में रूपान्तरित करने की भावना में, उन्हें 12 वर्ष के लिए श्वेताम्बर संघ से निष्कासित किया गया था। तब वे दिगम्बर साधुओं के संपर्क में आए व उनके तत्त्व से प्रभावित हुए। विशेषत: आचार्य समंतभद्रस्वामी के जीवन वृतांत व उनके साहित्य का उन पर भारी प्रभाव पड़ा। इस पर से कहा जाता है, कि वे आचार्य समंतभद्रदेव जैसी स्तुति आदि रचने लगे। आपका प्रभाव बहुत ही बढ़ने लगा, जिसके कारण श्वेताम्बर संघ को अपनी भूल का एहसास हुआ और प्रायश्चित की शेष अवधि को रद्द कर उन्हें प्रभावक आचार्य घोषित किया गया। लेकिन वे तो दिगम्बर आचार्य ही बने रहे ?

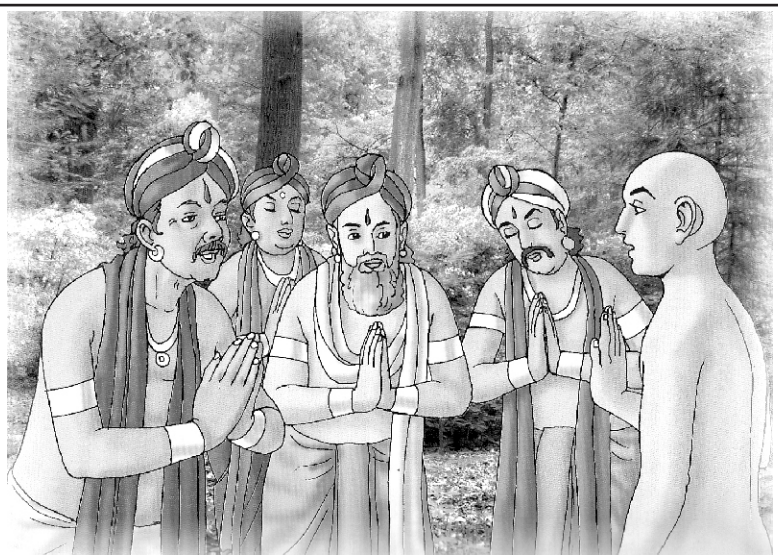

वादी लोग सिद्धसेन आचार्य से वाद में अपनी हार स्वीकार कर जिनधर्म अपना रहे हैं।

आप दिगम्बर संप्रदाय के 'सेन'गण के आचार्य माने जाते हैं। आपके बारे में ऐसा भी कहा जाता है, कि उन्होंने उज्जयिनी नगरी के महाकाल के मंदिर में 'कल्याणमंदिर' स्तोत्र द्वारा रुद्र-लिंग का स्फोटन कर पार्श्वनाथ

भगवान का जिनबिंब प्रकट किया। इससे भी आपकी बहुत ही प्रसिद्धि हुई तथा आपने [1]विक्रमादित्य राजा को संबोधन किया था।

आप आचार्य समंतभद्रदेव के पश्चात्वर्ती आचार्य माने जाते हैं—अत: आप ई.स. 568 के आचार्य माने जाते हैं।

आपकी 'सन्मतिसूत्र' व 'कल्याणमंदिर स्तोत्र' अति प्रसिद्ध रचनाऐं हैं। यद्यपि द्वात्रिंशिकाए श्वेताम्बर सिद्धसेन दिवाकर की रचना मानी जाती है, फिर भी उसमें कुछ रचना दिगम्बर सिद्धसेन आचार्य की है, व कुछ श्वेताम्बर सिद्धसेन दिवाकर की है।

कल्याणमंदिर स्तोत्र के रचयिता आचार्यदेव कुमुदचंद्रस्वामी को कोटि-कोटि वंदन।

1. जिनके नाम से विक्रम संवत शुरु होता है, वे राजा विक्रम अन्य थे, व ये राजा विक्रम अन्य होने चाहिए क्योंकि दोनों के बीच करीब 600 वर्ष का अंतर है।

❀ ❀ ❀

भगवान आचार्यदेव
श्री मानतुंगस्वामी

भक्तिपूर्ण काव्य के सृष्टा कवि के रूप में आचार्य भगवान मानतुंग प्रसिद्ध हैं। आप काशीनिवासी धनदेव ब्राह्मण के पुत्र थे। आपके संबंध में विशेष कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है,[1] फिर भी उपलब्ध जानकारी अनुसार वे प्रथम श्वेताम्बर साधु थे, पश्चात् दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। आप श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों आम्नाय में सम्मानित हैं।

आपके संबंध में एक प्रसिद्ध कथानुसार, आप एक बार विहार करते हुए [2]उज्जैन पधारे। आपकी चहुँमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर राजा भोज

1. कुछेक इतिहासकारों के अनुसार आप राजा हर्ष के आसपास के काल के आचार्य हैं, ऐसा भी माना जाता है। 2. पाठांतर – धारा नगरी

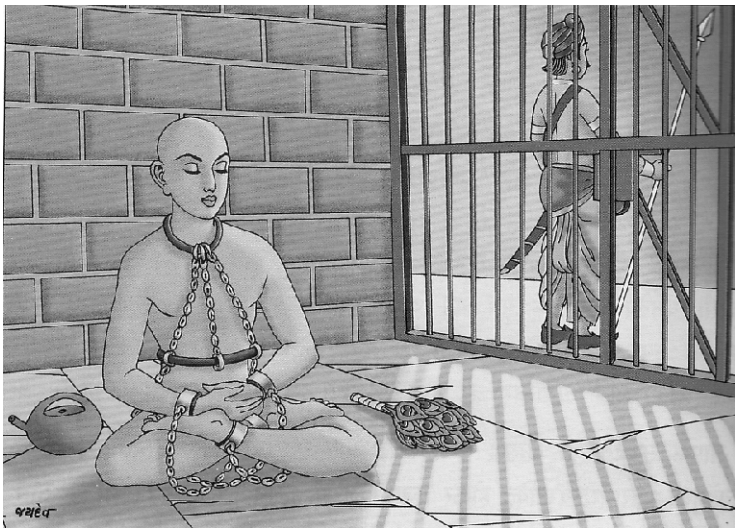

जेल में श्री मानतुंगाचार्य द्वारा 'भक्तामरस्तोत्र' की रचना करना।

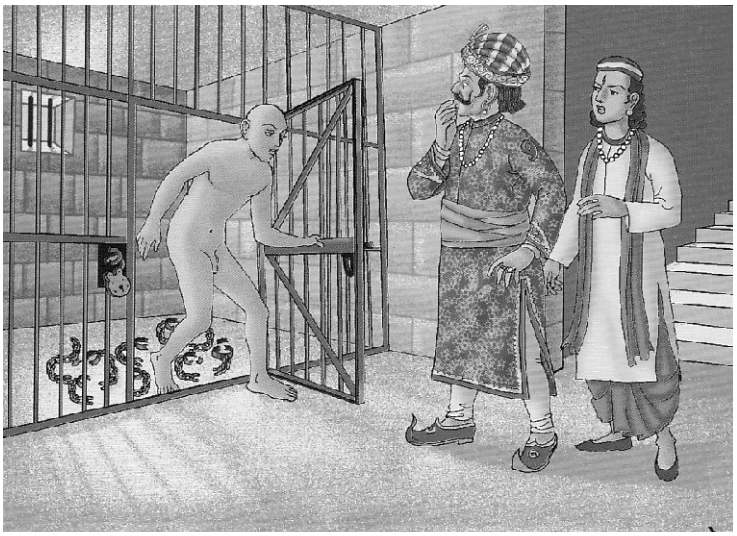

जेल में 'भक्तामरस्तोत्र' की रचना करने से बेड़ियाँ टूट गई और आचार्य जेल से बाहर आ गए, उन्हें देखकर राजा व कालिदास आश्चर्यचकित हो जिनधर्मी बनते हैं।

भी दर्शन के लिए गए। भोज के साथ संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास भी थे। कालिदास ने अपनी विद्वत्ता का प्रभाव दिखाने के लिए मानतुंगाचार्य से वाद-विवाद प्रारंभ कर दिया। भगवान मानतुंगाचार्य का दार्शनिक व

तात्त्विक ज्ञान बहुत उन्नत था। उन्होंने थोड़े समय के विवाद में ही कालिदास को निरुत्तर कर दिया। कालिदास बहुत लज्जित हुए और रात्रि में कालीदेवी की आराधना करके, दूसरे दिन भगवान मानतुंगसूरि को राजसभा में बुलाकर शास्त्रार्थ करने का आग्रह किया। राजा ने भगवान मानतुंगसूरि को बुलाने के लिए अपने सिपाही भेजे। परंतु वे नहीं आए। राजा ने भगवान मानतुंगाचार्य को जबरदस्ती पकड़कर बुलाया और कालिदास के साथ शास्त्रार्थ करने को कहा। भगवान मानतुंगाचार्य ने राजा की आज्ञा का कोई जवाब नहीं दिया, तो राजा ने क्रोधित होकर सूरीजी को 48कोठों के भीतरवाले कोठे में बेड़ियाँ लगाकर बंद कर दिया और कड़ा पहरा लगा दिया। रात्रि के पिछले पहर में सूरिजी ने अपने 148 कर्मों के नाश हेतु, 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना की और भक्ति में लीन होकर स्तोत्र का पाठ किया। पाठ करते हुए जब 46वाँ 'आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्ग' पढ़ने लगे, तब ऐसा चमत्कार हुआ कि हथकड़ी और ताले स्वयं टूट गए और वे 48कोठों के बाहर आ गए। इस चमत्कार को जानकर राजा भी वहाँ आया और सूरिजी के चरणों में नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा मांगी।

आपकी कवित्व शक्ति को विद्वानों ने राजा भोज के राज्यसभा के कवि कालिदास तथा अन्य कवि भारवी, भर्तुहरि, शुभचंद्र, धनंजय, कवि बाण व वररुचि के समान बिरदाई है।

आपकी मात्र एक ही रचना 'भक्तामर स्तोत्र' अति प्रसिद्ध रचना है, जिसमें आचार्यदेव ने आदिनाथ भगवान की स्तुति की है, परंतु इस स्तोत्र का प्रथम शब्द 'भक्तामर' होने से यह स्तोत्र 'भक्तामर-स्तोत्र' के नाम से प्रसिद्ध है।

आप ई.स. 618-650 के आचार्य होंगे—ऐसा इतिहासकारों का मानना है।

भक्तामर स्तोत्र के रचयिता आचार्यदेव मानतुंगस्वामी को कोटि-कोटि वंदन।

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला

जिनाज्ञा के अनुसार धर्म करो

जणि आणाए धम्मो, आणारहियाण फुड अहम्मित्ति।
इय मुणिऊण य तत्तं, जिण आणाए कुणह धम्मं॥92॥

भावार्थ - जो-जो धर्म कार्य करना, वह जिनाज्ञा प्रमाण ही करना। अपनी युक्ति से मानादि कषायों का पोषण करने के लिए जिनाज्ञा के सिवाय प्रवर्तन करना योग्य नहीं है, क्योंकि छद्मस्थ से अवश्य भूल हो ही जाती है।

यहाँ कोई कहता है - जिनाज्ञा तो अन्य लोग भी कहते हैं फिर हम किसको प्रमाण मानें ?

इसका उत्तर - कुन्दकुन्द आदि महान आचार्यों ने जो युक्ति और शास्त्र से अविरुद्ध यथार्थ आचरण बताया है, उसे तो अंगीकार करना और अन्य लोग ने जो अपना शिथिलाचार बताया है सो युक्ति, शास्त्र से परीक्षा करके जो प्रकट विरुद्ध भासित हो उसे त्यागना।

फिर कोई कहता है - यदि दिगम्बर शास्त्रों में अन्य-अन्य प्रकार से कथन हो तो क्या करें ?

इसका उत्तर - जो सभी शास्त्रों में एक जैसा कथन हो वह तो प्रमाण है ही और यदि कहीं विवक्षावश अन्य कथन हो तो उसकी विधि मिला लेना अर्थात् विवक्षा समझ लेना। यदि अपने ज्ञान में विधि न मिले तो अपनी भूल मानकर विशेष ज्ञानियों से पूछकर निर्णय कर लेना। शास्त्र देखने का विशेष उद्यमी रहे तो भूल मिट जाती है और श्रद्धा निर्मल होती है। शास्त्रों का विशेष अभ्यास सम्यक्त्व का मूल कारण है॥93॥

ढीठ, दुष्टचित्त और सुभट कौन है

साहीणे गुरुजोगे, जे ण हु णिसुणंति सुद्ध धम्मत्थं।
ते धिट्ठ-दुट्ठचित्ता, अह सुहडा भवभयविहूणा॥93॥

भावार्थ - धर्मात्मा पुरुष को यदि वक्ता का निमित्त न हो तो भी उसका

निमित्त कष्ट से भी मिलाकर धर्म श्रवण करते हैं और जिनको स्वयमेव वक्ता का निमित्त मिला और फिर भी धर्म श्रवण नहीं करते, वे अपना अकल्याण करने से दुष्ट हैं और कहे की लज्जा नहीं इस कारण ढीठ हैं और यदि उन्हें संसार का भय होता तो वे धर्म श्रवण करते किंतु वे नहीं सुनते हैं, इससे जाना जाता है कि वे संसार के भय से रहित सुभट हैं। यह आचार्य ने तर्क ंिंिं की है ।।93 ।।

गुणवान के निश्चय से मोक्ष होता ही है

सुद्ध कुल-धम्म-जायवि, गुणिणो ण रमंति लिंति जिणदिक्खं।
तत्तो वि परमतत्तं, तओ वि उवयारओ मुक्खं ।।94 ।।

भावार्थ - यदि संसार में सुख होता तो तीर्थंकर आदि महापुरुष किसलिए राजपाट को छोड़कर दीक्षा धारण करते पर वे दीक्षा धारण करते ही हैं, इससे मालूम होता है कि संसार में महान दु:ख है ।।94 ।।

ऋद्धियों से उदास पुरुष ही प्रशंसनीय है

वण्णेमि णारयाउ वि, जेसिं दुक्खाइं संस्मरंताणं।
भव्वाण जणइ हरिहर, रिद्धि-समिद्धि-विउव्वासं ।।95 ।।

भावार्थ - ज्ञानी जीव हरिहरादि की ऋद्धियों एवं समृद्धि रूप वैभव में भी प्रसन्न नहीं होते तो अन्य विभूति में तो कैसे रमेंगे अर्थात् नहीं रमेंगे क्योंकि ज्ञानी जीव बहुत आरंभ और परिग्रह से नरकादि के दु:खों की प्राप्ति जानते हैं और केवल सम्यग्दर्शनादि ही को आत्मा का हित मानते हैं ।।95 ।।

पूर्वाचार्य का आभार

सिरि धम्मदास गणिणा, रइयं उवएसमालसिद्धंतं।
सव्वे वि समण सावया, मण्णंति पठंति पाठंति ।।96 ।।

भावार्थ - यह उपदेश पहले आचार्य धर्मदासजी ने रचा था उसी को मैंने कहा है कोई कपोल-कल्पित नहीं है। अत: प्रामाणिक है और सम्यक्त्वादि को पुष्ट करने से सबका कल्याणकारी है ।।96 ।।

शास्त्र की निंदा दु:खों का कारण है

तं चेव केइ अहमा, छलिया अइ माण मोह भूएण।
किरियाए हीलंता, हा! हा! दुक्खाइं ण गणंति॥97॥

अर्थ – जो यथार्थ आचरण तो कर नहीं सकते और अपने आपको महंत मनवाना चाहते हैं, तीव्र मोही हैं, उनको यह यथार्थ उपदेश रुचता नहीं॥97॥

जिनाज्ञा के भंग से दु:खों की प्राप्ति

इयराण चक्करण वि, आणा भंगे वि होइ मरणदुहं।
किं पुण तिलोयपहुणो, जिणिंद देवाहिदेवस्स॥98॥

भावार्थ – मात्र अज्ञानवश कोई जीव यदि पदार्थ का अयथार्थ निरूपण करे तो भी आज्ञा भंग का दोष नहीं है किंतु जो जीव कषायवश एक अंश मात्र भी अयथार्थ-अन्यथा कहे अथवा कहे तो वह अनंत संसार होता है क्योंकि जो समस्त मिथ्या मतों का प्रवर्तन है, वह प्रवर्तन जिनाज्ञा नहीं मानने के कारण है, इसलिए धर्मार्थी पुरुषों को कषाय के वश होकर जिनाज्ञा भंग करना योग्य नहीं है। बाकी जिन्हें अपनी मानादि कषायों की पुष्टि करनी हो उनकी बात अलग है॥98॥

जिनवचन-विराधक को धर्म व दया नहीं होती

जगगुरु जिणस्स वयणं, सयलाण जियाण होइ हियकरणं।
ता तस्स विराहणया, कह धम्मो कह णु जीवदया॥99॥

अर्थ – अन्य कई लोग हैं वे जिनाज्ञा प्रमाण पूजादि कार्यों में हिंसा मानकर उनका तो उत्थापन करते हैं तथा अन्य रीति से धर्म तथा जीवदया की प्ररूपणा करते हैं। उनको कहा गया है कि 'जिनपूजनादि कार्यों में यदि हिंसा का दोष होता तो भगवान उनका उपदेश ही क्यों देते इसलिए तुम्हार समझ में ही दोष है। जिनवचन तो सर्वथा दयामयी ही हैं और जिनको जिनाज्ञा प्रमाण नहीं उनके न तो धर्म है और न ही दया है'॥99॥

आगमरहित क्रिया आडंबर निंद्य ह

किरियाइ फडाडोवं, अहियं साहंति आगमविहूणं।
मुद्धाण रंजणत्थं, सुद्धाणं हीलणत्थाए ॥100॥

भावार्थ - कितने ही मिथ्यादृष्टि जीव जिनाज्ञा के बिना अनेक आडंबर धारण करते हैं, वे आडंबर मूर्खों को उत्कृष्ट भासते हैं परंतु ज्ञानी जानते हैं कि ये समस्त क्रिया जिनाज्ञा रहित होने से कार्यकारी नहीं है ॥100॥

शुद्ध धर्म का दाता ही परमात्मा है

जो देइ सुद्ध धम्मं, सो परमप्पा जयम्मि ण हु अण्णो।
किं कप्पदुम्म सरिसो, इयर तरु होइ कइ आवि ॥101॥

भावार्थ - समस्त जीवों का हित सुख है और वह सुख धर्म से होता है। इसलिए जो शुद्ध धर्म का उपदेश देते हैं वे ही परमात्मा और परम हितकार हैं, अन्य स्त्री-पुत्रादि हितकार नहीं हैं, क्योंकि उनसे तो मोह उत्पन्न होता है ॥101॥

अविवेकी मध्यस्थ नहीं रह सकता

जे अमुणिय गुणदोसा, ते कह विबुहाण हुंति मज्झत्था!
अह ते वि हु मज्झत्था, विस अमियाण तुल्लत्तं ॥102॥

अर्थ - जो मूर्ख गुण और दोष को नहीं पहिचानते वे पंडितों के ऊपर माध्यस्थ भाव कैसे रख सकते हैं, क्रोधादि कैसे नहीं करेंगे अर्थात् करेंगे ही क्योंकि उन्हें पंडितों के गुणों की परख नहीं है अथवा वे मूर्ख भी यदि मध्यस्थ हों तो विष और अमृत का समानपना ठहर जाए सो है नहीं ॥102॥

धर्म के मूल वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र हैं

मूलं जिणिंद देवो, तव्वयणं गुरुजणं महासयणं।
सेसं पावट्ठाणं, परमप्पाणं च वज्जेमि ॥103॥

भावार्थ - देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान सम्यक्त्व का मूल कारण है, सो मैंने अपना तथा दूसरों का श्रद्धान दृढ़ करने के लिए यह उपदेश रचा है-ऐसा आशय है ॥103॥

साभार : उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में सोलहवें वार्षिक महोत्सव पर

गुरुवाणी मंथन शिविर सानन्द संपन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : 01 फरवरी से 06 फरवरी वार्षिक महोत्सव के अवसर पर इस बार गुरुवाणी मंथन शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें बाहर के साधर्मी एवं मङ्गलायतन के मङ्गलार्थियों ने अद्‌भुत लाभ प्राप्त किया। कार्यक्रम का शुभारम्भ मङ्गल कलश शोभायात्रा से हुआ। ध्वजारोहण श्री अभिषेक जैन परिवार, साहिबाबाद ने किया। तत्पश्चात् बाहुबली जिनमन्दिर में आयोजित विधानत्रय के मांडले पर मङ्गल कलश की स्थापना श्री राजेन्द्रकुमार-बीना जैन परिवार, देहरादून; श्री राकेश जैन परिवार, लखनऊ; श्री अरविन्दकुमार-रेखा जैन, जलेसर द्वारा की गई तथा विधान के आयोजक श्री अशोककुमार-मधु जैन परिवार, देहरादून थे। शिविर के उद्‌घाटन समारोह में अध्यक्षता श्रीमान् अजितप्रसाद जैन दिल्ली ने की। शिविर आमन्त्रणकर्ता श्री कुन्दकुन्द तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई एवं श्री विमलकुमार कुसुम जैन, नीरु कैमिकल्स, दिल्ली थे। विधि-विधान का आयोजन पंडित मनीष जैन शास्त्री पिड़ावा एवं पंडित संजय जैन शास्त्री द्वारा सम्पन्न कराया गया। विधान के बीच में आये हुए महत्त्वपूर्ण तथ्यों से पंडित संजय शास्त्री ने सभी को अवगत कराया।

3 फरवरी को भगवान आदिनाथ के निर्वाण कल्याणक की पूजा के पश्चात् निर्वाण श्रीफल चढ़ाया गया। प्रतिदिन तीनों समय पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनों पर पंडित वीरेन्द्रजी, आगरा; पंडित देवेन्द्रजी, बिजौलियां एवं पंडित संजयजी, मङ्गलायतन ने स्वाध्याय कराया। व्याख्यानमाला में पंडित सचिनजी, पंडित मनीष शास्त्री आदि के स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ। प्रतिदिन मङ्गलार्थी स्वाध्याय का भी आयोजन हुआ। अंतिम दिन अर्थात् 6 फरवरी को कृत्रिम पहाड़ी भगवान श्री आदिनाथ पर्वत पर अभिषेक कार्यक्रम रखा गया, जिसमें बाहर से पधारे अतिथियों ने भी अभिषेक किया। ज्ञात हो कि इसी दिन तीर्थधाम मङ्गलायतन में भगवान विराजमान हुए थे।

शिविर समापन के अवसर पर श्री पवन जैन ने ये भावना व्यक्त की - कि इस प्रकार का शिविर मङ्गलायतन में हर वर्ष लगाया जाए। समस्त कार्यक्रम का संयोजन पंडित अशोक लुहाड़िया, पंडित सुधीर शास्त्री एवं पंडित सचिन्द्र शास्त्री ने किया।

विधान एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानंद संपन्न

दिल्ली : 28 दिसम्बर से 31 दिसम्बर 2018 तक श्री दिगम्बर जैन दिव्य देशना ट्रस्ट दिल्ली के अंतर्गत, अध्यात्म तीर्थ आत्मसाधना केन्द्र के प्रांगण में चार दिवसीय विधान एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानंद संपन्न हुआ। विधान, श्री समयसारजी, श्री प्रवचनसारजी, श्री तत्त्वार्थसूत्रजी एवं श्री दानोपदेश मंडल पंडित संजय शास्त्री द्वारा एक-एक पद्य का अर्थ समझाते हुए संगीतमय शैली में संपन्न हुआ। प्रतिदिन करणानुयोग के विशेषज्ञ पंडित प्रकाशचंदजी छाबड़ा इंदौर के प्रतिदिन दो-दो समय मार्मिक व्याख्यान हुए। व्याख्यानमाला के अंतर्गत डॉ. सुदीप जैन; डॉ. भीमसागरजी जैन; डॉ. अशोकजी जैन गोयल; पंडित राकेशजी शास्त्री, घेवरा मोड़; पंडित संदीपजी शास्त्री, घेवरा मोड़; पंडित ऋषभ शास्त्री, उस्मानपुर का लाभ प्राप्त हुआ। आत्मार्थी कन्याओं के द्वारा प्रतिदिन वैराग्यमयी सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी के जीवन पर आधारित पंडित संजय शास्त्री ने अद्भुत वैराग्यमय कथा प्रस्तुत की।

मुख्य विधान आमंत्रणकर्ता श्री अजितप्रसादजी एवं श्रीमती सुशीला जैन एवं सुपुत्र श्री वैभवजी व श्रीमती स्वाति जैन, राजपुर रोड परिवार, दिल्ली थे। समस्त कार्यक्रम का संयोजन श्री नवीन शास्त्री एवं श्री सुरेन्द्र शास्त्री थे। इस प्रसंग पर श्री आदीश जैन; श्री विमलकुमार जैन, नीरु कैमिकल; श्री नरेश लुहाड़िया; श्री दीपचन्द सेठिया आदि ने भी कार्यक्रम में भाग लिया।

ग्वालियर नगर में श्री पार्श्वनाथ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद संपन्न

ग्वालियर : 16 जनवरी से 21 जनवरी 2019 तक ऐतिहासिक एवं धार्मिक नगरी ग्वालियर में, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के संयुक्त मार्गदर्शन में एवं मुमुक्षु मंडल ग्वालियर के तत्त्वावधान में श्री 1008 पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव ऐतिहासिक उपलब्धियों के साथ सानन्द संपन्न हुआ। इस भव्य प्रतिष्ठा महोत्सव में साधर्मियों का अपार समुदाय उमड़ पड़ा। आसपास के अंचलों से समुदाय के समुदाय जैन समाज कार्यक्रम का लाभ उठाने के लिये आ रहे थे। भव्य बनारस नगर में रंचमात्र भी जगह नहीं थी। विशाल पाण्डाल साधर्मियों की भीड़ से भरी हुई थी। इस प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रतिष्ठाचार्य बालब्रह्मचारी अभिनन्दनजी शास्त्री, देवलाली थे एवं संपूर्ण कार्यक्रम का कुशल निर्देशन पंडित संजय शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़ ने किया। इस कार्यक्रम में पंडित श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, आगरा; डॉ. संजीव गोधा, जयपुर; पंडित राजकुमार जैन, गुना; डॉ.

राकेश शास्त्री, नागपुर; डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; ब्रह्मचारी श्री कैलाशचन्द्र अचल, ललितपुर; पंडित राकेश जैन, दिल्ली आदि ने इस ज्ञानयज्ञ में ज्ञानगंगा बहायी। डॉ. संजीव गोधा के पंच कल्याणक संबंधी व्याख्यानों ने जनसमुदाय का मन मोह लिया।

सह प्रतिष्ठाचार्य के रूप में श्री विराग शास्त्री, जबलपुर; श्री सुबोध शास्त्री, शाहगढ़; श्री सुनील धवल, भोपाल का योगदान भी उल्लेखनीय रहा। संगीत सरिता बहाने के लिए श्री सुबोध जैन, ग्वालियर; श्री देवेन्द्र जैन, अहमदाबाद का विशेष योगदान रहा। ग्वालियर नगर के समस्त स्थानीय विद्वान एवं स्थानीय गीतकार एवं संगीतकारों ने इस कार्यक्रम में अपना सहयोग देकर कार्यक्रम को और भव्य बना दिया।

गर्भ कल्याणक की रात्रि को माधव संगीत महाविद्यालय के कलाकारों ने प्राचीन भजन संध्या प्रस्तुत करके तानसेन की यादों को ताजा कर दिया। तप कल्याणक की रात्रि को प्रसिद्ध मोटीवेशनल स्पीकर श्री शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल ने 'इन भावों का फल क्या होगा ?' विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत कर अपार जनसमुदाय को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

इस महामहोत्सव में अंतिम दिन, रमणीक स्थल तिघरा में नवनिर्मित जिनमंदिर में 63 इंच के सीमंधर भगवान को विराजमान किया गया। परम पूज्य कुन्दकुन्द आचार्य की एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की भी प्रतिकृति स्थापित की गई। इस महामहोत्सव में विधिनायक प्रतिमा-प्रदीप चौधरी, किशनगढ़; सुन्दर वेदी-श्री प्रेमचन्द बजाज, कोटा एवं विशाल कलश-श्री अजितप्रसाद जैन, दिल्ली ने प्रदान किया। मूलनायक श्री सीमंधर भगवान की विशाल प्रतिमा-श्री वज्रसेन जैन परिवार ने प्रदान की।

सौधर्म इंद्र-इंद्राणी का पद श्री धीरेन्द्र सोनिया जैन, कलकत्ता एवं माता-पिता का पद श्री सुशील नीता जैन, ग्वालियर ने प्राप्त किया। इस महामहोत्सव के माध्यम से पवित्र जिनधर्म की महती प्रभावना हुई।

गुरुवाणी मंथन शिविर एवं नियमसार मंडल विधान संपन्न

शिवपुरी : श्री वासुपूज्य दिगम्बर जैन परमागम मंदिर की छठवीं वर्षगांठ के अवसर पर गुरुवाणी मंथन शिविर एवं श्री नियमसार मंडल विधान का आयोजन किया गया। दिनांक 09 जनवरी से 13 जनवरी 2019 तक आयोजित इस कार्यक्रम में आगरा से पधारे पंडित वीरेन्द्रकुमारजी के द्वारा प्रात: नियमसार पर, दोपहर में गुरुदेवश्री के सीडी प्रवचन के पश्चात समयसार पर एवं रात्रि में गुरुदेवश्री के सीडी प्रवचन के बाद प्रवचनसार ग्रंथराज पर प्रासंगिक व्याख्यान हुए। साथ ही प्रतिदिन प्रात: जिनेन्द्र पूजन, नियमसार विधान एवं रात्रि में जिनेन्द्र भक्ति का कार्यक्रम आयोजित हुआ। संपूर्ण कार्यक्रम श्री विराग शास्त्री, जबलपुर के निर्देशन में संपन्न हुआ। इस अवसर पर पंडित मांगीलालजी कोलारस, पंडित सुनील शास्त्री शिवपुरी का भी ला प्राप्त हुआ।

वैराग्य समाचार

विदिशा : पंडितश्री ज्ञानचन्दजी का देह-परिवर्तन शान्तपरिणामपूर्वक हुआ। आदरणीय पण्डितजी साहब ने पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में बैठकर तत्त्वज्ञान का अमृत पीया है और यह अमृत अनवरतरूप से जन-जन को पिलाया है। आदरणीय पण्डितजी साहब अत्यन्त परिश्रमी, भद्र परिणामी, मन्द कषायी, गहरे अभ्यासी, आत्मार्थी विद्वान थे। पण्डितजी साहब ने गुरुदेवश्री के प्रभावनायोग में देश भर में गुरुदेव के अग्रदूत बनकर जिनशासन का शंखनाद बजाया है। पण्डितजी साहब के वैराग्यमयी अद्‌भुत प्रवचन 'वाणीभूषण' पद को सार्थक करते हैं।

पण्डितजी साहब ने सोनागिर जैसे महान सिद्धक्षेत्र में मुमुक्षु समाज का विशाल तीर्थ बनाकर महान कार्य किया है। मुमुक्षु समाज आपके उपकारों का चिरऋणी रहेगा। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन के प्रति विशेष प्रेम सदा से रहा है।

जबलपुर : श्रीमती भूरीबाई जबलपुर का स्वर्गवास शान्तपरिणामपूर्वक हुआ। आपश्री अशोककुमारजी एवं पंडित अभयकुमारजी माताश्री थीं। सम्पूर्ण जीवन आपने आत्माराधना में निकाला। आपका समस्त विद्वानों के प्रति अत्यन्त वात्सल्य परिणाम था। आप जबलपुर मुमुक्षु मंडल में एक आदर्श महिला थीं।

ललितपुर : श्रीमती चंदा टडैया धर्मपत्नी श्री अभयकुमार जैन टडैया ललितपुर का शान्तपरिणामपूर्वक देहविलय हो गया।

सहारनपुर : इंजी. श्री विमलप्रसादजी का शान्तपरिणामपूर्वक देहविलय हो गया। आप डॉ० पी. के. जैन के पिताश्री थे। आप अत्यन्त तत्त्वरुचि सम्पन्न और भद्र परिणामी थे।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों - ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

मङ्गलायतन पत्रिका अब मोबाइल पर भी

आप मोबाइल पर PLAY STORE जाएं वहाँ JAIN PATRIKA APPS को DOWNLOAD करें। उसमें मङ्गलायतन पत्रिका आप पढ़ सकते हैं।

यह ऐप हमारे यहाँ के मङ्गलार्थी छात्र समकित जैन, कैराना ने तैयार किया है।

ग्वालियर नगर में श्री पार्श्वनाथ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की झलकियाँ

प्रकाशन तिथि - 14 फरवरी 2019 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 फरवरी 2019
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मुनिदशा में उपशमरस का ज्वार

अहो ! मुनिवर तो आत्मा के आनन्द में झूलते हैं। बारम्बार अन्तर में निर्विकल्प अनुभव करते हैं। बाह्य दृष्टि जीवों को उस मुनिदशा की कल्पना आना भी कठिन है। मुनि की बाह्यदशा तो बिलकुल नग्न दिगम्बर ही होती है तथा अन्तर में आत्मा की शान्ति का सागर उछलता है.... आनन्द का सागर उछलता है.... उपशमरस का ज्वार आया है। यद्यपि अभी महाव्रतादि की शुभवृत्ति उत्पन्न होती है, किन्तु उसे ज्ञानस्वभाव से भिन्न जानते हैं।

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, जिनशासन, पृष्ठ - 42)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com